क़ुरआन
का
ख़ानदानी निज़ाम

मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी

विषय-सूची

1. प्रस्तावना 5

2. ख़ानदान-सामाजिक ज़िन्दगी की पहली संस्था 7

3. इस्लाम ने ख़ानदानी निज़ाम को मज़बूत किया है 7

4. रहबानियत (संन्यास) और आवारगी के बजाय बीच का रास्ता 8

5. निकाह का मक़सद 9

6. मियाँ-बीवी एक-दूसरे के लिए सुकून का सबब हैं 11

7. मर्द, ख़ानदान का मुखिया है 12

8. औरत को ज़ुल्म और नाइनसाफ़ी से बचाने की तदबीरें 14

9. एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त 15

10. अगर शौहर-बीवी के ताल्लुक़ात ख़राब होने लगें 17

11. तलाक़ की गुंजाइश 18

12. तीन तलाक़ों का मसला 19

13. औलाद की परवरिश, तालीम और तरबियत की ज़िम्मेदारी माँ-बाप दोनों की है 20

14. औलाद को क़त्ल करने की किसी सूरत में इजाज़त नहीं 22

15. माँ-बाप के हक़ और अधिकार 23

16. वृद्धाश्रम (Old Age Home) 24

17. ख़ूनी रिश्तों का आदर 25

18. विरासत का क़ानून 26

19. वसीयत का हक़ 27

20. ख़ुलासा 28

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

प्रस्तावना

20-21 नवम्बर सन् 2009 ई॰ को इदारा उलूमुल-क़ुरआन अलीगढ़ के प्रबन्धन के तहत "ख़ानदानी निज़ाम और क़ुरआनी शिक्षाएँ" के केन्द्रीय विषय पर एक सेमिनार का आयोजन हुआ था। उसके उद्घाटन समारोह में मुझ साधारण से व्यक्ति को प्रमुख भाषण प्रस्तुत करने का निमन्त्रण दिया गया था। उस अवसर पर ज़रूरी नोट्स की रौशनी में जो भाषण प्रस्तुत किया गया, बाद में उसे डॉ॰ रज़ीयुल इस्लाम नदवी, सेक्रेट्री तस्नीफ़ी एकेडमी नई दिल्ली ने काग़ज़ के पन्नों पर स्थानान्तरित किया और उसके अन्तर्गत कुछ शीर्षक निर्धारित कर दिए, जिसके लिए मैं उनका बहुत शुक्रगुज़ार हूँ। मैंने उस पूरे प्रारूप का दोबारा अवलोकन किया और कमी-बेशी करने के बाद एक लेख का रूप दे दिया। यह लेख त्रैमासिक तहक़ीक़ाते-इस्लामी अलीगढ़ पत्रिका के अंक (जनवरी-मार्च 2010 ई॰) में प्रकाशित हो चुका है।

अब यह लेख और सँवार-सुधार और कुछ इज़ाफ़ों के साथ छोटी पुस्तिका के रूप में प्रस्तुत हो रहा है। इसमें ख़ानदान और परिवार से सम्बन्धित क़ुरआन की शिक्षाओं का कुछ न कुछ ख़ुलासा (सारांश) आ गया है। आशा है कि इस्लामी ख़ानदान के परिचय में यह किसी क़द्र लाभदायक साबित होगा। ख़ानदान व परिवार से सम्बन्धित इस्लाम की शिक्षाओं पर मुझ साधारण से व्यक्ति की कई-एक किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। विस्तृत अध्ययन के लिए उनसे फ़ायदा उठाया जा सकता है। दुआ है कि अल्लाह तआला इन प्रयासों को स्वीकृति प्रदान करें। आमीन!

जलालुद्दीन

1 नवम्बर 2012 ई॰

क़ुरआन का ख़ानदानी निज़ाम

ख़ानदान—सामाजिक ज़िन्दगी की पहली संस्था

हम सब जानते हैं कि इनसान सामाजिक ज़िन्दगी बसर करना चाहता है। एक तो उसकी फ़ितरत में यह शामिल है कि वह समाज में रहना पसन्द करता है। दूसरे यह कि उसकी ज़रूरतों का भी तक़ाज़ा है कि दूसरों के साथ मिल-जुलकर रहे। इनसान को अल्लाह तआला ने इस तरह पैदा किया है कि वह अकेले ही अपनी ज़रूरतें पूरी नहीं कर सकता। बहुत-से आदमी मिलकर उसकी ज़रूरतों को पूरा करते हैं। ख़ानदान व परिवार इस सामाजिक ज़िन्दगी की सबसे पहली और बुनियादी संस्था है। यहीं से सामाजिकता की शुरुआत होती है और बहुत-से ख़ानदान मिलकर समाज बनाते हैं।

समाजी इल्म के जानकार बताते हैं कि ख़ानदान विभिन्न प्रकार के रहे हैं और अब भी हैं। छोटे और औसत दर्जे के ख़ानदान व परिवारों का वुजूद भी हर दौर में रहा है और अपेक्षाकृत बड़े परिवार भी पाए जाते हैं। छोटे ख़ानदान मियाँ-बीवी और बच्चों से मिलकर बनते हैं। कई बार इसमें माँ-बाप और बहुत ही क़रीबी रिश्तेदार भी शामिल होते हैं। कुछ परिवार संयुक्त होते हैं जो कई परिवारों पर आधारित होते हैं। इनका प्रबन्ध कभी अलग-अलग और कभी संयुक्त और मिला-जुला होता है।

इस्लाम ने ख़ानदानी निज़ाम को मज़बूत किया है

इस्लाम ने ख़ानदान व परिवार की बुनियादी संस्था को बाक़ी रखा और इसमें आसमानी हिदायतों से महरूमी (वंचित होने), मन की ख़ाहिशों के दख़ल या ज़ुल्म-ज़्यादती और अत्याचार की वजह से जो बहुत-सी ख़राबियाँ घुस आई थीं उनको दूर किया। क़ुरआन मजीद में तफ़सील से इन ख़राबियों का ज़िक्र भी है। और यह भी बताया गया है कि इन ख़राबियों को किस तरह से दूर किया जा सकता है? उसने ख़ानदानी निज़ाम में पाई जानेवाली ख़राबियों को दूर ही नहीं किया, बल्कि ख़ानदान (परिवार) का एक तफ़सीली

नक़्शा भी पेश किया और बताया कि ख़ानदान किस तरह का होना चाहिए? इसमें मसले पैदा हों तो उन्हें किस तरह हल किया जाना चाहिए? इससे ख़ानदान (परिवार) के फ़ितरी तक़ाज़े भी पूरे होते हैं और अदल व इनसाफ़ के तक़ाज़े भी पूरे होते हैं। क़ुरआन मजीद एक पाकीज़ा और अच्छे समाज के लिए सेहतमन्द ख़ानदान को लाज़िम क़रार देता है। कोई भी दौर या ज़माना हो और कैसे ही हालात हों, वह इसे एक स्थाई और हमेशा रहनेवाली संस्था की हैसियत से बाक़ी रखना चाहता है। इसके लिए उसने अख़लाक़ और क़ानून दोनों से मदद ली है। वह विभिन्न तरीक़ों से इस इदारे (संस्था) को मज़बूत करता और अटल बनाता है।

रहबानियत (संन्यास) और आवारगी के बजाय बीच का रास्ता

ख़ानदान की शुरुआत मर्द और औरत के जिंसी ताल्लुक़ से होती है । इस ताल्लुक़ के सिलसिले में एक तो रहबानियत (संन्यास) की विचारधारा है कि यह इनसान की रूहानी तरक़्क़ी में रुकावट है। जो कोई रूहानी दर्जे तय करना चाहता है उसे इससे अपने दामन को बचाए रहना चाहिए । दूसरी विचारधारा केवल भोग-विलासिता या स्वच्छंद यौन-इच्छाओं की पूर्ति की है। रहबानियत तो शायद धीरे-धीरे दम तोड़ चुकी है, लेकिन जिंसी (यौनाचारी) आवारगी का रास्ता खुला हुआ है। अब तो दुनिया बेतहाशा इसकी तरफ़ दौड़ रही है। इस्लाम ने सन्तुलन का रास्ता दिखाया है। उसने कहा है कि जिंसी ख़ाहिश को पूरा करना एक फ़ितरी ज़रूरत है, लेकिन इसको पूरा करने के लिए कुछ ख़ास शर्तों के साथ ही इजाज़त दी जा सकती है। इसके लिए उसने 'निकाह' (विवाह) की शर्त रखी है कि शादी ही के ज़रिए आदमी अपनी जिंसी ख़ाहिश को पूरा कर सकता है। यह जायज़ ही नहीं, बल्कि नेकी (पुण्य) का काम है। एक बार अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा कि "हर नेक काम में सवाब है। इस बारे में आप (सल्ल॰) ने बताया कि तुम्हारे जिंसी अमल (यौनाचार) में भी सवाब है।" इस पर सहाबा (सम्मानित साथियों) ने पूछा : ऐ ख़ुदा के पैग़म्बर, एक आदमी अपनी ख़ाहिश पूरी करता है तो क्या इसमें भी उसे सवाब मिलेगा? आप (सल्ल॰) ने कहा—

"तुम्हारा क्या ख़्याल है? अगर वह अपनी ख़ाहिश को ग़लत तरीक़े से पूरी करता तो क्या उसे गुनाह न होता? इसी तरह अगर वह इसे सही तरीक़े से पूरी कर रहा है तो इसपर वह अज्र (इनाम) का हक़दार है?" (हदीस : सहीह मुस्लिम)

जिंसी जज़्बों को ख़त्म करने की कोशिश इनसान की फ़ितरत के ख़िलाफ़ है। इसमें वह कभी कामयाब नहीं हो सकता। इस्लाम ने सख़्ती के साथ इस बात से मना किया है। सहाबा (रज़ि०) में से कुछ का रुझान था कि रहबानियत (संन्यास) अपना लें। नबी (सल्ल०) ने कहा कि इस्लाम में इसकी कोई गुंजाइश नहीं। एक हदीस में है–

"इस्लाम में रहबानियत (संन्यास) नहीं है।"

जो बात इस हदीस में कही गई है वह सहीह हदीसों से साबित है। सहाबा (रज़ि०) में से कुछ लोगों ने सोचा कि ख़सी करवा लें, ताकि जिंसी ख़ाहिश ही का ख़ात्मा हो जाए। नबी (सल्ल०) को यह मालूम हुआ तो आप (सल्ल०) ने फ़रमया–

"मुझे रहबानियत (संन्यास) का हुक्म नहीं दिया गया है।"

(हदीस : सुनन-दारमी)

निकाह का मक़सद

इस्लाम ने निकाह का मक़सद यह बताया है कि इसके ज़रिए से आदमी पाकदामनी और पाकबाज़ी की ज़िन्दगी गुज़ार सकता है और ग़लत कामों से दामन बचाकर रह सकता है। प्यारे नबी (सल्ल०) का इरशाद (कथन) है–

"ऐ नौजवानो, तुममें से जो व्यक्ति शादी करने की ताक़त रखता है उसे शादी कर लेनी चाहिए।"

(हदीस : सहीह बुख़ारी, सहीह मुस्लिम)

इस्लाम के फ़क़ीहों और आलिमों ने यहाँ तक लिखा है कि अगर किसी के बद्कारी में पड़ जाने का अन्देशा हो और उसे हज करने जाना हो तो उसे चाहिए कि पहले शादी करे और बाद में हज को जाए, क्योंकि हज को बाद

के लिए टाला जा सकता है लेकिन निकाह को बाद के लिए टालने से बद्कारी में पड़ जाने का अन्देशा है।

इसी हदीस में यह भी कहा गया है—

"और जो आदमी शादी करने की ताक़त न रखता हो उसे चाहिए कि रोज़े रखे। वे उसके लिए रुकावट साबित होंगे।"

मतलब यह कि रोज़े रखने से जिंसी ख़ाहिश क़ाबू में रहेगी। ज़ाहिर बात है कि अगर आदमी ख़ूब खाए-पिए या ऐश और मौज-मस्ती की ज़िन्दगी बसर करे तो उसके जिंसी जज़्बात उसी लिहाज़ से भड़केंगे। उनपर कंट्रोल करने का तरीक़ा यह बताया गया है कि रोज़े रखे जाएँ। खाने-पीने पर कंट्रोल हो तो जिंसी जज़्बात भी क़ाबू में रहेंगे। बद्कारी से बचने का यह भी एक तरीक़ा है कि आदमी ऐश की ज़िन्दगी न गुज़ारे।

क़ुरआन मजीद में एक जगह महरम औरतों (वे औरतें जिनसे शादी हराम है) का ज़िक्र करने के बाद कहा गया है—

"तुम्हारे लिए उन (महरम) औरतों के सिवा दूसरी औरतें हलाल कर दी गई हैं कि तुम उनको अपने माल (मह्र) के ज़रिए से तलब (मांग) करो, निकाह के बन्धन में लाने के लिए, न कि वे जिंसी ख़ाहिश पूरी करने के लिए।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-24)

मतलब यह कि जो औरतें हराम कर दी गई हैं। उनसे शादी नहीं हो सकती। उनके अलावा दूसरी औरतों से 'मह्र' अदा करके निकाह (विवाह) हो सकता है। लेकिन इसका मक़सद यह है कि तुम पाकबाज़ी की ज़िन्दगी गुज़ारो और बद्कारी से बचो।

आयत में अरबी लफ़्ज़ 'हिस्न' का इस्तेमाल हुआ है। 'हिस्न' क़िला को कहते हैं और 'मुहसिनीन' का मतलब यह है कि इस क़िला में दाख़िल हो जाओ। इसमें आने के बाद तुम पर बद्कारी के हमले नहीं हो सकेंगे। यानी जो आदमी भी इस क़िले के अन्दर आ जाएगा वह सुरक्षित हो जाएगा। इसी तरह 'सफ़ह' का लफ़्ज़ अरबी ज़बान में उस रविश के लिए इस्तेमाल होता है जिसमें आदमी अपनी जिंसी भावनाओं के पीछे बेतहाशा

दौड़ने लगे। जहाँ शादी का हुक्म दिया गया है वहीं इसकी यह मसलिहत भी बताई गई है कि इसके ज़रिए से तुम्हारी पाकीज़गी की हिफ़ाज़त होगी और तुम बद्कारी और उसके बुरे नतीजों से बच सकोगे।

मियाँ-बीवी एक-दूसरे के लिए सुकून का सबब हैं

क़ुरआन मजीद निकाह के ताल्लुक़ को लगाव और मुहब्बत का ताल्लुक़ क़रार देता है। यह मुहब्बत फ़ितरी और दोतरफ़ा होती है। इस ताल्लुक़ की वजह से ज़िन्दगी की कड़ुवाहट और बेचैनी दूर होती और सुकून हासिल होता है। आदमी किसी अजनबी लड़की से शादी करता है, कई बार ऐसा होता है कि पहले से उससे कोई जान-पहचान नहीं होती, लेकिन निकाह होते ही उनके बीच मुहब्बत पैदा हो जाती है। क़ुरआन कहता है कि यह क़ुदरत की एक बड़ी निशानी है–

> "और उसकी निशानियों में से यह है कि उसने तुम्हारे लिए तुम ही में से जोड़े बनाए, ताकि तुम उनसे सुकून हासिल करो और उसने तुम्हारे बीच मुहब्बत और रहमत रख दी। इसमें निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो सोच-विचार करते हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयत-21)

इस आयत में निकाह का एक मक़सद यह बताया गया है कि इसके ज़रिए से मियाँ-बीवी को सुकून हासिल हो, दूसरी बात यह कही गई है कि अल्लाह इसके ज़रिए से मियाँ-बीवी के दिलों में मुहब्बत पैदा करता है। यह इस बात की तरफ़ इशारा है कि मुहब्बत दोनों तरफ़ से होनी चाहिए। अगर वह एकतरफ़ा होगी तो देर तक रहनेवाली नहीं होगी। जहाँ तक सुकून का ताल्लुक़ है, इस हक़ीक़त से इनकार नहीं किया जा सकता कि ज़िन्दगी की हमाहमी, बेक़रारी और बेचैनी में आदमी को घर में और वह भी बीवी ही के ज़रिए से सुकून मिल सकता है। इसी तरह बीवी के लिए शौहर ही सुकून और आराम-चैन का सबब है। आज इनसान सुकून की तलाश में रहता है और दुनियावी तरक़्क़ी के बावजूद वह जिस चीज़ से महरूम है वह सुकून और इत्मीनान ही है। क़ुरआन ने बताया कि अगर तुम सुकून चाहते हो तो

शादी-शुदा ज़िन्दगी गुज़ारो। वह कहता है कि सोच-विचार करनेवालों के लिए इसमें बड़ी निशानियाँ हैं कि दो अजनबी इनसान एक-दूसरे के लिए किस तरह सुकून का सबब बन जाते हैं।

शौहर-बीवी के बीच जो ताल्लुक़ होना चाहिए उसे क़ुरआन ने इन शब्दों में बयान किया है—

"बीवियाँ तुम्हारे लिए लिबास हैं और तुम उनके लिए लिबास हो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-187)

इस आयत के माने और मतलब पर हम जितना सोच-विचार करेंगे उतने ही नए-नए पहलू हमारे सामने खुलकर आते जाएँगे और हम हैरत में पड़ जाएँगे कि क़ुरआन मजीद ने मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ की कितनी उम्दा या बामानी मिसाल बयान की है। इनसान का लिबास उसके बदन के सबसे ज़्यादा क़रीब होता है। उससे क़रीब कोई दूसरी चीज़ नहीं होती। क़ुरआन ने कहा कि तुम बीवियों का लिबास हो और वे तुम्हारा लिबास हैं। मियाँ-बीवी के बीच जो क़ुरबत होती है उसके लिए इससे बेहतर और कोई मिसाल नहीं दी जा सकती। लिबास का एक फ़ायदा यह भी है कि वह हमारे बदन के ऐबों को ढाँप देता है। बदन के जिस हिस्से पर लिबास होता है वहाँ अगर कोई फोड़ाफ़ुंसी है, या कोई और ख़राबी है तो लिबास उन सबको छिपा देता है। क़ुरआन कहता है कि तुम्हारे ताल्लुक़ की ख़ूबी यह है कि तुम बीवी का लिबास हो और बीवी तुम्हारा लिबास है। दोनों एक-दूसरे के लिए परदापोशी हैं।

मर्द, ख़ानदान का मुखिया है

इस्लाम ने ख़ानदान की तामीर (निर्माण) में मर्द और औरत दोनों को शरीक किया, लेकिन मर्द को घर और ख़ानदान का मुखिया ठहराया, कोई छोटे-से-छोटा इदारा भी बग़ैर ज़िम्मेदार के चल नहीं सकता। उससे जुड़े जितने भी लोग हों सब अपना हुक्म चलाना चाहें तो मुमकिन नहीं कि इस पर अमल हो सके। इसलिए क़ुरआन ने कहा कि मर्द और औरत दोनों मिलकर ख़ानदान की तामीर करेंगे, लेकिन उसमें ज़िम्मेदार मर्द होगा—

"मर्द औरतों के मामलों के ज़िम्मेदार हैं, इस बिना पर कि अल्लाह ने उनमें से कुछ को कुछ पर बड़ाई दी है और इस बिना पर कि उन्होंने अपने माल ख़र्च किए हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-34)

ख़ानदान के निज़ाम में मर्द को ज़िम्मेदार बनाने की इस आयत में दो वजहें बयान हुई हैं। एक यह कि अल्लाह तआला ने मर्द को जिस्मानी (बदन), ज़ेहनी और दूसरे पहलुओं से औरत के मुक़ाबले में ज़्यादा सलाहियतें दी हैं। दूसरी वजह यह है कि उसपर औरत की माली ज़िम्मेदारी है। इसकी वजह भी उसकी ताक़त और सलाहियत ही है। एक आदमी मज़बूत और ताक़तवर है और दूसरा कमज़ोर, तो ताक़तवर आदमी के लिए ज़रूरी है कि कमज़ोर का बोझ बरदाश्त करे। क़ुरआन ने कहा है कि मर्द औरतों के मुक़ाबले में मज़बूत और औरत उसके मुक़ाबले में कमज़ोर होती है, इसलिए वह उसपर अपना पैसा ख़र्च करे और उसकी ज़रूरतों का ख़याल रखे। यह एक आम उसूल है, कुछ शक्लें इससे भिन्न हो सकती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि कोई औरत मर्द के मुक़ाबले में मज़बूत हो, सलाहियत वाली हो और मालदार भी हो। ये सब इमकानी बातें (संभावनाएँ) हैं, लेकिन आम तौर पर बात यह कही गई है कि ख़ानदान का मुखिया (नायक) मर्द होगा। इसमें अस्लन ताक़त, सलाहियत और ज़िम्मेदारियों का एतिबार किया गया है। मर्द को इस मामले में तरजीह हासिल है, इसलिए कहा गया कि घर के निज़ाम में उसे ज़िम्मेदार की हैसियत हासिल होगी।

ख़ानदान का निज़ाम उसी वक़्त बेहतर तरीक़े से चल सकता है जब मर्द की इस हैसियत को औरत क़ुबूल करे और ख़ुशदिली से उसका कहा माने। इसी लिए क़ुरआन कहता है—

"तो नेक औरतें शौहर की फ़रमाँबरदार होती हैं। हिफ़ाज़त करनेवाली होती हैं उनके पीछे, इस वजह से कि अल्लाह ने उनकी हिफ़ाज़त की है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-34)

आयत में आए हुए अरबी शब्द 'क़ुनूत' के माने इताअत व फ़रमाँबरदारी

के हैं। "क़ानितात" का मतलब यह है कि नेक औरतें फ़रमाँबरदार होती हैं। अल्लाह के हुक्मों की भी और शौहर की हिदायतों की भी। "अल्लाह ने उनकी हिफ़ाज़त की है" का एक मतलब यह भी है कि अल्लाह ने चूँकि औरतों के हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त की है, मर्दों को पूरा-पूरा इक़्तिदार (शासनाधिकार) नहीं दिया है, इसका तक़ाज़ा है कि वे उनकी फ़रमाँबरदारी करने वाली हों, इस अन्देशे में न पड़ें कि शौहरों की फ़रमाँबरदारी की वजह से उनके हुक़ूक़ बरबाद हो जाएँगे।

औरत को ज़ुल्म और नाइन्साफ़ी से बचाने की तदबीरें

इक़्तिदार और ताक़त के साथ ज़ुल्म-ज़्यादती और नाइन्साफ़ी की संभावना हर हाल में रहती है। मर्दों को अगर यह ताक़त दी गई है तो उनकी ओर से ज़ुल्म-ज़्यादती की संभावना को रोकने के लिए दोहरे क़दम उठाए गए हैं। एक यह कि उन्हें हुक्म दिया गया कि औरतों के साथ बेहतर सुलूक करें। इस सिलसिले में क़ुरआन कहता है–

> "और उनके साथ भले तरीक़े के मुताबिक़ रहन-सहन रखो, तो अगर तुम उन्हें नापसन्द करते हो तो मुमकिन है कि तुम किसी चीज़ को नापसन्द करो और अल्लाह ने उसमें बहुत कुछ भलाई रख दी हो।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-19)

'मारूफ़' से मुराद यह है कि सोसायटी के अन्दर बेहतरीन सुलूक का जो ख़याल और दर्जा है उसके मुताबिक़ औरतों के साथ मामला किया जाए। मारूफ़ ज़माना और हालात के लिहाज़ से और ख़ुद मियाँ-बीवी के हालात के लिहाज़ से बदलता रहेगा। आदमी जिस माहौल और जिस देश में रह रहा है उसके लिहाज़ से भी उसमें बदलाव होगा। बहरहाल, औरत के साथ सुलूक ऐसा होना चाहिए कि उसे आम लोगों में बेहतर सुलूक समझा जाता हो। इसके साथ एक अहम बात यह कही गई है कि औरत की कुछ बातें तुम्हारे लिए नागवारी का कारण हो सकती हैं, तब भी उसके साथ अच्छा बरताव जारी रहना चाहिए। इस तरह की सूरते-हाल में इससे अच्छी और बेहतर तालीम कुछ और नहीं हो सकती। औरत की कुछ बातें फ़ितरी तौर पर शौहर

को नागवार हो सकती हैं, कभी उसका सुलूक ग़लत हो सकता है, उसके मिज़ाज (स्वभाव) में चिड़चिड़ापन हो सकता है, उसकी तरफ़ से कभी ग़ुस्सा और कभी बदज़ुबानी का इज़हार हो सकता है और कभी यह होता है कि शौहर ने कोई बात कही, लेकिन बीवी ने न मानी। क़ुरआन मजीद का मंशा यह है कि इन कमज़ोरियों के बावजूद तुम्हारा सुलूक औरत के साथ भले-तरीक़े के मुताबिक़ होना चाहिए। आलिम लोग कहते हैं कि आयत के टुकड़े (और अल्लाह ने उसमें बहुत कुछ भलाई रख दी हो) में इस तरफ़ इशारा है कि अल्लाह तुम्हें ऐसी औलाद दे सकता है जो तुम्हारे दिल को ख़ुश कर दे, जो इल्म, ताक़त, परहेज़गारी और नेकी के लिहाज़ से बेहतर हो। उस वक़्त तुम भूल जाओगे कि उसकी माँ का तुम्हारे साथ क्या रवैया था।

औरतों के साथ सिर्फ़ अच्छे बरताव की ही तालीम नहीं दी गई, बल्कि उनके क़ानूनी हुक़ूक़ भी तय कर दिए गए। इस बारे में क़ुरआन ने कहा—

> "और औरतों के लिए कुछ हुक़ूक़ भी हैं, जिस तरह उनपर ज़िम्मेदारियाँ हैं, दस्तूर के मुताबिक़।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-228)

यानी औरतों की ज़िम्मेदारियाँ भी हैं और उनके हुक़ूक़ भी हैं। शौहरों को यह देखने का हक़ है कि बीवियाँ अपनी ज़िम्मेदारियाँ अदा कर रही हैं या नहीं? लेकिन साथ ही, उन्हें यह भी देखना चाहिए कि उनके हुक़ूक़ अदा हो रहे हैं या नहीं? क़ुरआन मजीद ने औरत के हुक़ूक़ और ज़िम्मेदारियाँ दोनों ही का ज़िक्र किया है। शादीशुदा ज़िन्दगी में जहाँ यह देखा जाएगा कि औरत अपनी ज़िम्मेदारियाँ अदा कर रही है या नहीं, वहाँ इसका भी एहतिमाम होगा कि उसके हुक़ूक़ अदा किए जाते रहें और इसमें कोताही न होने पाए।

एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त

इस्लाम ने मर्द को एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त दी है। अरब में इसका रिवाज था। लोग कई-कई बीवियाँ रखते थे। दूसरे मज़हबों और अरब से बाहर दूसरे देशों में भी जो लोग मालदार होते उनकी कई-कई

बीवियाँ होती थीं। इसकी कोई हद न थी। इस्लाम ने कहा कि आदमी ज़्यादा से ज़्यादा चार बीवियाँ ही रख सकता है। यह बात जंगी पसमंज़र (सन्दर्भ) में कही गई है। सब जानते हैं कि जंग की सूरत में ज़्यादातर जवान उम्र और हट्टे-कट्टे लोग ही काम आते हैं। उस दौर की जंगों में इसका ज़्यादा इमकान था। इसलिए अगर एक से ज़्यादा शादियों पर पाबन्दी लगा दी जाती तो बेवा हो जानेवाली औरतें बेशौहर के रह जातीं। इस्लाम ने इसका हल यह बताया कि आदमी एक से ज़्यादा बीवियाँ रख सकता है। लेकिन इसे उसने जंगी हालात के साथ ख़ास नहीं किया, बल्कि आम रखा। इसलिए कि मर्द को भी कई वजहों से एक से ज़्यादा बीवियों की ज़रूरत पेश आ सकती है। इसी लिए मुस्लिम उम्मत की इसपर सहमति है कि इस हुक्म का ताल्लुक़ सिर्फ़ हालते-जंग से नहीं है, बल्कि यह एक आम हुक्म है। इसमें एक से ज़्यादा शादियों के जायज़ होने का ज़िक्र है। हाँ, क़ुरआन ने इसके लिए दो शर्तें रखी हैं। एक यह कि आदमी एक ही वक़्त में चार से ज़्यादा बीवियाँ नहीं रख सकता। दूसरी शर्त यह रखी है कि एक से ज़्यादा बीवियाँ हों तो उनके बीच इनसाफ़ के तक़ाज़े लाज़िमन पूरे किए जाएँ। क़ुरआन में कहा गया—

> "अगर तुम्हें डर हो कि तुम यतीमों के मामले में इनसाफ़ नहीं कर सकोगे तो निकाह करो उन औरतों में से जो तुम्हें अच्छी लगें, दो, तीन, चार। लेकिन अगर तुम्हें अन्देशा हो कि तुम इनसाफ़ नहीं कर सकोगे तो एक ही पर बस करो या जो तुम्हारी मिल्क में हों। इस तरह उम्मीद है कि तुम बेइनसाफ़ी से बच जाओगे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-3)

क़ुरआन मजीद का यह बयान बड़ा अहम है कि अगर तुम्हें इसका अन्देशा हो कि बीवियों के बीच इनसाफ़ न कर सकोगे तो तुम्हें एक ही बीवी रखनी चाहिए। इसका मतलब यह है कि शादी से पहले आदमी अपने हालात और अपने संसाधनों का जाइज़ा ले। इसमें जिस्मानी ताक़त और माली संसाधन दोनों ही शामिल हैं। अपनी उम्र और तवानाई, होनेवाली औलाद, उनकी परवरिश और उनकी तालीम व तरबियत पर अच्छी तरह सोच-विचार

कर ले। अगर वह डर महसूस करे कि इनसाफ़ नहीं कर पाएगा तो एक से ज़्यादा शादियाँ करने से बचे। इस पाबन्दी से ज़ुल्म-ज़्यादती से बचा जा सकता है। इस्लामी शरीअत की रू से इसकी गुंजाइश है कि अगर एक से ज़्यादा बीवियों की सूरत में इनसाफ़ के तक़ाज़े पूरे न हों और उनमें से किसी का हक़ मारा जा रहा हो तो वह क़ानूनी कार्रवाई कर सकती है।

अगर शौहर-बीवी के ताल्लुक़ात ख़राब होने लगें

मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ हमेशा खुशगवार नहीं रहते। कभी ऐसा होता है कि उनमें नाहमवारी और नागवारी भी पैदा हो जाती है। इस सूरत में इस्लाम की तालीम यह है कि आदमी सब्र-ज़ब्त से काम ले और हिकमत, तदबीर और समझने-समझाने के ज़रिए अपने हालात सुधारने की कोशश करे। इस मक़सद से वह किसी हद तक बीवी के साथ सख़्ती भी कर सकता है लेकिन इस इख़्तियार के ग़लत इस्तेमाल और जायज़ हद से आगे बढ़ने की इजाज़त उसे नहीं है। इसी तरह मर्द के अन्दर कोई ख़राबी है तो औरत उसके सुधार की मुनासिब अन्दाज़ में कोशिश करे। उसके बावजूद इसका इमकान है कि मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ात में इस क़द्र बिगाड़ पैदा हो जाए कि उसे वे खुद ख़त्म न कर सकें। इस सूरत में क़ुरआन मजीद की तालीम यह है कि दोनों तरफ़ से एक-एक आदमी को पंच बनाया जाए और वे समझने-समझाने के ज़रिए उनके हालात सुधारने की कोशिश करें। जवानी में जज़्बात का ग़लबा होता है, बहुत-सी नामुनासिब बातें हो जाती हैं, कभी-कभी दोनों ख़ानदान के लोग अपनी नासमझी से हालात को बिगाड़ देते हैं। अगर साफ़ मन के साथ कोशिश हो तो सुधार की उम्मीद की जा सकती है। क़ुरआन कहता है—

> "अगर तुम्हें डर हो दोनों में मतभेद और ज़िद और हठधर्मी का तो एक पंच मर्द की तरफ़ से और एक पंच औरत की तरफ़ से भेजो। अगर वे सुधार का इरादा करें तो अल्लाह शौहर-बीवी के बीच मेल-जोल पैदा कर देगा। बेशक अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और क़ुदरत रखनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-35)

अगर शौहर बीवी और दोनों तरफ़ के पंच सुधार की चाहत रखते होंगे तो अल्लाह उनके बीच आपसी मेल-जोल का कोई न कोई रास्ता निकाल देगा।

अल्लाह के इस फ़रमान का ताल्लुक़ देखने में दोनों ख़ानदानों से है कि उनके ज़िम्मेदार सुधार की कोशिश करें इसका मुख़ातब मुस्लिम समाज भी हो सकता है और अगर मामला अदालत में पहुँच जाए तो वह भी पंच निश्चित कर सकती है। लेकिन उनकी कोशिश हालात को सुधारने की होगी, वे दोनों पक्षों को मशवरा दे सकते हैं, कोई फ़ैसला नहीं कर सकते, फ़ैसले का हक़ मियाँ-बीवी ही को होगा। बहरहाल, यह एक पसन्दीदा अमल है।

तलाक़ की गुंजाइश

हालात सुधारने की कोशिश के बाद भी मियाँ-बीवी के लिए शादी के रिश्ते को बाक़ी रखना और एक साथ चलना कठिन हो जाए तो इस्लाम ने मर्द के लिए तलाक़ और औरत के लिए ख़ुलअ का रास्ता रखा है। इस्लाम ने यह नहीं कहा कि ताल्लुक़ात कितने ही बिगड़ जाएँ, औरत और मर्द की ज़िन्दगी कितनी ही अजीरन क्यों न हो जाए, तलाक़ नहीं हो सकती या औरत ख़ुलअ नहीं हासिल कर सकती।

इस्लाम से पहले अरबवालों में तलाक़ की कोई हद नहीं थी। आदमी जब चाहता तलाक़ दे देता और जब चाहता रुजूअ कर लेता। इस तरह वह औरत को ज़िन्दगी भर तंग कर सकता था। क़ुरआन ने कहा कि तलाक़ का हक़, जिसमें इद्दत के दौरान रुजूअ किया जा सकता है, दो बार है—

"तलाक़ दो बार है, इसके बाद आदमी या तो भले तरीक़ों के मुताबिक़ रोक ले या भले तरीक़े से छोड़ दे।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-229)

इस आयत में रजई तलाक़ का ज़िक्र है। आदमी को सिर्फ़ दो बार एक के बाद दूसरी तलाक़ का हक़ हासिल है। इससे वह (इद्दत में जो तीन हैज़ या तीन महीना है) रुजूअ कर सकता है। हुक्म है कि रुजूअ कर ले तो बीवी के साथ भले तरीक़े से मामला करे और अलग होने का फ़ैसला करे तो बेहतर

तरीक़े से अलग करे। इद्दत का ज़माना गुज़र जाए और रुजूअ न करे तो नए सिरे से निकाह करना होगा। तीसरी बार तलाक़ दे दे तो रुजूअ का हक़ बाक़ी नहीं रहेगा। अलबत्ता उस औरत ने किसी दूसरे मर्द से शादी कर ली हो तो फिर उस मर्द का इन्तिक़ाल हो जाए या वह उस औरत को तलाक़ दे दे तो उस सूरत में पहला शौहर उससे निकाह कर सकता है। अल्लाह ने फ़रमाया–

> "फिर अगर वह उसे (तीसरी बार) तलाक़ दे दे तो अब वह उसके लिए हलाल नहीं है, यहाँ तक कि वह उसके अलावा किसी दूसरे मर्द से निकाह कर ले। (और उसके साथ हमबिस्तरी भी हो जाए)"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-230)

अगर किसी औरत को तलाक़ दे दी गई तो उसे दूसरी शादी से मना नहीं किया गया। ऐसा नहीं है कि तीन तलाक़ हो गईं तो अब वह ज़िन्दगी भर घर बैठी रहेगी। क़ुरआन कहता है कि इद्दत गुज़ारने के बाद वह दूसरी शादी कर सकती है, उसके बाद अगर उसका शौहर मर जाए या उसे तलाक़ दे दे (इसमें दस-बीस साल भी लग सकते हैं, महीने-दो महीने और कुछ दिन में भी यह बात हो सकती है) तो बीते ज़माने के तजुर्बों के बाद और इन हालात से गुज़रने के बाद उसका पहला शौहर चाहे और औरत ख़ुद भी आमादा हो तो उनके बीच नए सिरे से शादी का रिश्ता क़ायम हो सकता है। यह मुश्किल तरीक़ा इसलिए अपनाया गया है ताकि आदमी तलाक़ और रुजूअ को मज़ाक़ न समझ ले और तीसरी बार तलाक़ देने से पहले हज़ार बार सोच ले कि फिर बीवी से ताल्लुक़ आसान न होगा।

तीन तलाक़ों का मसला

हदीस में तलाक़ वक़्फ़े-वक़्फ़े से पाकी की हालत में देने का हुक्म है। सुन्नत का तरीक़ा यही है कि एक बार तलाक़ देने के बाद आदमी इद्दत गुज़रने दे, ताकि अगर आगे ज़रूरत महसूस हो तो उनके बीच नए सिरे से निकाह हो सके। सहाबा (रज़ि॰) का अमल इसी पर था। मर्द ने औरत को एक बार तलाक़ दी और छोड़ दिया। इस तरह मियाँ-बीवी के बीच जुदाई

हो गई। फिर इद्दत गुज़रने के बाद अगर वह दोबारा उस औरत से शादी करना चाहे तो कर सकता है। शरीअत के सभी आलिम की इसपर एक राय हैं। हाँ, एक सवाल यह सामने रहा है कि अगर किसी ने यह तरतीब (क्रम) बाक़ी नहीं रखी और एक ही बार में तीनों तलाकें दे दीं तो क्या उसका तलाक़ का हक़ ख़त्म हो गया। अब वह रुजूअ कर सकता है या नहीं? शरीअत के आम आलिमों के नज़दीक शौहर को तीन तलाक़ों का हक़ दिया गया था, अगर उसने एक ही बार में उनका इस्तेमाल कर लिया तो उन्हें तीन ही समझा जाएगा, लेकिन शरीअत के कुछ दूसरे आलिम कहते हैं कि हदीसों से मालूम होता है कि अगर उसने एक बैठक में तीन नहीं, तीन सौ तलाकें भी दे दीं तो उन्हें एक ही गिना जाएगा और उसे रुजूअ करने का हक़ होगा। एक तलाक़ बहरहाल हो जाएगी। यह बात कोई नहीं कहता कि अगर किसी ने एक ही वक़्त में तीन तलाक़ दे दी तो तलाक़ ही नहीं होगी। सभी के नज़दीक तलाक़ हो जाएगी। मतभेद इसमें है कि एक बैठक की तीन तलाकें एक होंगी या तीन? यह एक क़ानूनी बहस है। इस सिलसिले में एक राय यह भी है कि जो सोच-विचार करने के क़ाबिल है कि अगर कोई व्यक्ति एक मजलिस में तीन बार तलाक़-तलाक़-तलाक़ ताकीद के तौर पर कहे और उसकी मुराद सिर्फ़ एक हो तो उसका एतिबार किया जाना चाहिए।

औलाद की परवरिश, तालीम और तरबियत की ज़िम्मेदारी माँ-बाप दोनों की है

इस्लामी क़ानून के अनुसार औलाद बाप की तरफ़ मंसूब होती है, वही उसका वली और सरपरस्त होता है और उसकी माली (आर्थिक) ज़िम्मेदारी उठाता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि औलाद माँ की तरफ़ मंसूब नहीं होगी। क़ानूनी बात और है, लेकिन औलाद माँ की तरफ़ भी मंसूब हो सकती है। अगर यह कहा जाए कि यह फ़ुलाँ औरत की औलाद है, तो ग़लत न होगा। क़ुरआन मजीद ने औलाद की निस्बत बाप और माँ दोनों की तरफ़ की है। कहा गया है—

"और माएँ अपनी औलाद को दो साल तक दूध पिलाएँ। यह हुक्म

उस व्यक्ति के लिए है जो पूरी मुद्दत दूध पिलवाना चाहे और जिसकी औलाद है वह उनके खाने-कपड़े का बन्देबस्त (प्रबन्ध) करे दस्तूर के मुताबिक़। किसी व्यक्ति को उसकी ताक़त से ज़्यादा का मुकल्लफ़ नहीं बनाया जाएगा। न माँ को उसके बच्चे के सबब तकलीफ़ पहुँचाई जाए, न बाप को उसकी औलाद की वजह से नुक़सान पहुँचाया जाए।'' (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-233)

इस आयत में बच्चे को माँ की तरफ़ भी मंसूब किया गया है और बाप की तरफ़ भी। क़ानूनी एतिबार से 'नफ़्क़ा' (खाना-कपड़ा) बाप की ज़िम्मेदारी है, लेकिन माँ की तरफ़ भी औलाद की निस्बत हो सकती है।

क़ुरआन मजीद में इमरान की बीवी, जो हज़रत मरयम की माँ थीं, की नज़र (मन्नत) का ज़िक्र है—

''याद करो वह वक़्त जब इमरान की बीवी ने कहा था : ऐ मेरे पालनहार (रब)! मैंने मन्नत मानी है कि जो औलाद मेरे पेट में है वह तेरे दीन के लिए वक़्फ़ होगी, तू उसे क़ुबूल कर ले। बेशक तू सुननेवाला और जाननेवाला है।''

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-35)

इस आयत के बारे में मशहूर हनफ़ी फ़क़ीह आलिम अल्लामा अबू-बक्र जस्सास राज़ी (रह॰) कहते हैं—

''इससे मालूम होता है कि माँ को औलाद की तादीब (अदब सिखाने), तालीम दीन की राह में लगाने और उसकी तरबियत के सिलसिले में एक तरह की सरपरस्ती हासिल है। वह सरपरस्त बन सकती है। वरना वह (इमरान की बीवी) उसकी मन्नत न मानती। इसी तरह उसे इसका भी हक़ है कि अगर बाप नाम न रखे तो वह अपनी औलाद का नाम रखे। यह सही नाम होगा।

(अबू-बक्र जस्सास, अहकामुल-क़ुरआन-2/14)

औलाद का खाना-ख़र्चा बरदाश्त करना और उसके लिए भाग-दौड़ करना बाप की ज़िम्मेदारी है—

"और जिसकी औलाद है वह उन (तलाक़ पाई हुई बीवियों) के खाने-कपड़े का बन्दोबस्त करे दस्तूर के मुताबिक़।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-233)

इसी तरह उनकी सही तालीम व तरबियत भी माँ-बाप की ज़िम्मेदारियों में दाख़िल है। माँ-बाप को इसका अमली तौर पर नमूना पेश करना चाहिए। वे उन्हें जहन्नम की आग से बचाने की फ़िक्र करें और ख़ुद भी जहन्नम से बचें—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, बचाओ अपने आपको और अपने घरवालों को आग से।" (क़ुरआन, सूरा-66 तहरीम, आयत-6)

इस आयत में बताया गया है कि पहली ज़िम्मेदारी यह है कि आदमी ख़ुद जहन्नम की आग से बचे और दूसरी ज़िम्मेदारी यह है कि बीवी-बच्चों को आग से बचाए। इसमें इस बात की तरफ़ इशारा है कि आदमी को दूसरों को सुधारने से पहले ख़ुद को नमूना बनना चाहिए और अपने घर को नमूना बनाना चाहिए। अगर घर नमूना नहीं बनेगा तो सुधार नहीं हो सकता। यह बात क़ुरआन में पैग़म्बर (सल्ल॰) की पाक बीवियों को ख़िताब करके कही गई है—

"और याद रखो जो कुछ तुम्हारे घरों में अल्लाह की आयतें और हिकमत की बातें सुनाई जाती हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-34)

इस आयत में इस बात की तालीम दी गई है कि हमारे घरों को दावत और दीन फैलाने का मर्कज़ होना चाहिए।

औलाद को क़त्ल करने की किसी सूरत में इजाज़त नहीं

क़ुरआन मजीद ने यह बात साफ़ तौर पर वाज़ेह कर दी है कि हर इनसान जो पैदा होता है वह ज़िन्दा रहने का हक़ लेकर पैदा होता है। उसके इस हक़ को कोई छीन नहीं सकता। माँ-बाप भी औलाद से ज़िन्दा रहने का हक़ नहीं छीन सकते। यह एक क़ानूनी जुर्म है। यह बात क़ुरआन में बहुत

तफ़सील से बयान हुई है। अरब में ग़रीबी, मुहताजी, तंगदस्ती और कुछ दूसरे असबाब से औलाद को मार देने की घटनाएँ होती थीं। क़ुरआन ने कहा—

> "और अपनी औलाद को क़त्ल न करो ग़रीबी की बिना पर, हम तुम्हें भी रोज़ी देते हैं और उन्हें भी देंगे।
>
> (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-151)

कभी मुहताजी और तंगदस्ती से ज़्यादा ग़रीबी से औलाद के क़त्ल कर देने का मामला होता था। क़ुरआन ने इससे भी मना किया है—

> "और अपनी औलाद को क़त्ल न करो ग़रीबी और फ़ाक़े के डर से। हम उन्हें भी रोज़ी देते हैं और तुम्हें भी। उनका क़त्ल बहुत बड़ी ख़ता है।" (क़ुरआन, सूरा-17 इसरा, आयत-31)

औलाद के क़त्ल की कोई वजह बयान नहीं की जा सकती। इसलिए क़ुरआन ने इसे बेइल्मी और जिहालत की हरकत और आदमी और क़ौम का नुक़सान और घाटा कहा है—

> "वे लोग घाटे में हैं जिन्होंने अपनी औलाद को नादानी में इल्म न होने की बिना पर क़त्ल किया।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-140)

यह बड़ी मूर्खतापूर्ण और संगदिलाना हरकत है कि आदमी अपनी औलाद को क़त्ल कर दे। जो लोग अपनी बेवक़ूफ़ी से इस अपराध को अंजाम दे रहे हैं क़ुरआन ने कहा है कि वे बड़े ख़सारे और घाटे में हैं। इससे नस्ल तबाह होती है और क़ौम की समाजी ताक़त ख़त्म हो जाती है। यह सरासर घाटे का सौदा है। उन्हें ख़ुद ही सोचना चाहिए।

माँ-बाप के हक़ और अधिकार

क़ुरआन मजीद में औलाद के सिलसिले में जहाँ माँ-बाप की ज़िम्मेदारियाँ बयान हुई हैं, वहीं औलाद को भी माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक, बरताव और उनकी ज़रूरतों को पूरा करने की हिदायत की गई है—

"और उन दोनों के साथ रहो दुनिया में भले तरीक़े के मुताबिक़।"
(क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-15)

माँ-बाप के साथ भले तरीक़े के मुताबिक़ मामला करने के हुक्म में उनका खाना-ख़र्चा, कपड़े और दूसरी ज़रूरतों को पूरा करना शामिल है। एक जगह उनके साथ एहसान का रवैया अपनाने का हुक्म है। इसमें सिर्फ़ क़ानूनी ज़िम्मेदारियाँ अदा करने ही का नहीं, बल्कि उनके मान-सम्मान और अदब का पहलू भी है। इसके साथ यह भी कहा गया है कि उनके लिए पालनहार ख़ुदा से दुआ की जाती रहे और हर मुमकिन ख़िदमत के बावजूद कोताही का एतिराफ़ हो, ख़ास तौर पर उनके बुढ़ापे के सालों में; जब कि वे ज़्यादा औलाद के सहारे और निगरानी में होते हैं और स्वभाव में एक तरह का चिड़चिड़ापन आ जाता है, उनके साथ अच्छे और बेहतरीन सुलूक की ताकीद की गई है—

"और तेरे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि उसके सिवा किसी की इबादत न करो और माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करो। अगर उनमें से कोई एक या दोनों तुम्हारे पास बुढ़ापे की उम्र को पहुँचें तो उनसे उफ़ तक न कहो और न उन्हें झिड़को और उनसे अदब के साथ बात करो। और दयालुता और नर्मी के साथ उनके आगे झुके रहो और कहो ऐ मेरे पालनहार! इन दोनों पर रहम कर जिस तरह इन्होंने बचपन में मेरी परवरिश की थी।"
(क़ुरआन, सूरा-17 इसरा, आयतें-23,24)

इस आयत में माँ-बाप के साथ ज़िन्दगी भर अच्छे सुलूक और बुढ़ापे में उनकी मन-भावनाओं और मजबूरियों का ख़याल रखने की तालीम है। माँ-बाप के सिलसिले में औलाद को इससे बेहतर तालीम नहीं दी जा सकती।

वृद्धाश्रम (Old Age Home)

आज के दौर में सवाल यह किया जाता है कि क्या इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार वृद्धाश्रम (Old Age Home) की गुंजाइश है? मेरे विचार से ओल्ड एज होम का ख़याल क़ुरआन से मुताबक़त (अनुरूपता) नहीं रखता।

"अगर वे तुम्हारे पास रहते हुए बुढ़ापे की उम्र को पहुँच जाएँ" से इशारा मिलता है कि माँ-बाप को साथ होना चाहिए। लेकिन आज के हालात में कभी ऐसा होता है कि माँ-बाप को साथ रखना मुशकिल हो जाता है। कभी बीवी की वजह से कि वह इसके लिए तैयार नहीं है और शौहर का उसपर कंट्रोल नहीं है, या आजकल माँ-बाप अपने देश भारत में हैं और बेटा अमेरिका या ब्रिटेन में रह रहा है। या फिर सऊदी अरब या किसी दूसरे देश में नौकरी कर रहा है। इस तरह की और भी कठिनाइयाँ हो सकती हैं। आयत का मंशा यह मालूम होता है कि माँ-बाप की माली (आर्थिक) ज़रूरतों के साथ-साथ उनकी दिलजोई का भी इन्तिज़ाम होना चाहिए। अब इसके लिए आदमी क्या तरीक़ा अपनाए इसको तय नहीं किया जा सकता, लेकिन हर आदमी ख़ुद सोच सकता है कि इस सूरते-हाल में उसे क्या करना चाहिए?

ख़ूनी रिश्तों का आदर

क़ुरआन मजीद ने माँ-बाप और बीवी-बच्चे के हक़ और अधिकारों के साथ ख़ूनी रिश्तों के आदर और उनके हक़ और अधिकारों की अदाइगी का भी हुक्म दिया है–

> "और उस अल्लाह से डरो जिसका वास्ता देकर तुम एक-दूसरे से माँगते हो और नाता-रिश्ता तोड़ने से बचो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-1)

ईमानवालों की जो ख़ूबियाँ बयान की गई हैं उनमें से एक ख़ूनी रिश्तों को जोड़े रखना भी है–

> "और वे जोड़ते हैं उस ताल्लुक़ को जिसे अल्लाह ने जोड़ने का हुक्म दिया है।" (क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-21)

और यह भी कहा गया है कि यह सिर्फ़ उपदेश और नसीहत नहीं है, बल्कि ताकीदी हुक्म है–

> "और रिश्तेदार को उसका हक़ दो और मिसकीन और मुसाफ़िर को

> उसका हक़ दो और फ़ुज़ूलख़र्ची से बचो।" (ग़ैरज़रूरी कामों में माल न उड़ाओ) (क़ुरआन, सूरा-17 इसरा, आयत-26)

इस आयत में बड़ी अहम बात बताई गई है कि फ़ुज़ूलख़र्ची करोगे, दौलत को बेजा तौर पर ख़र्च करने और ग़लत राहों में उठाने लगोगे तो क़रीबी रिश्तेदारों का और दूसरे हक़दारों का हक़ अदा नहीं होगा। यह हक़ उसी वक़्त अदा होगा जब माल-दौलत के ख़र्च पर कंट्रोल रखोगे और हक़दारों का हक़ पहचानोगे।

विरासत का क़ानून

क़ुरआन मजीद ने रिश्तेदारों के दूसरे हक़ और अधिकारों के साथ-साथ विरासत में भी उनका हक़ रखा है।

किसी के मर जाने के बाद आम तौर पर उसके लड़के उसके माल और जायदाद के वारिस समझे जाते थे। कभी ऐसा भी होता कि औलाद में भी बड़ा लड़का अस्ल वारिस क़रार दिया जाता था। औरतों और कम उम्र बच्चों का कोई हक़ तस्लीम नहीं किया जाता था। वे इससे महरूम ही होते। क़ुरआन ने इस ज़ुल्म और नाइनसाफ़ी को ख़त्म किया। उसने कहा—

> "मर्दों का भी हिस्सा है उस माल में जिसे माँ-बाप और क़रीबी रिश्तेदारों ने छोड़ा है और औरतों का भी हिस्सा है उस माल में जिसे माँ-बाप और क़रीबी रिश्तेदारों ने छोड़ा है, चाहे वह माल थोड़ा हो या ज़्यादा। हर एक का एक तयशुदा हिस्सा है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-7)

मतलब यह कि आदमी ने मौत के वक़्त कम या ज़्यादा जो माल भी छोड़ा है उसमें मर्दों की तरह औरतों का भी तयशुदा (निश्चित) हिस्सा है।

क़ुरआन के विरासत के क़ानून की बुनियाद शौहर-बीवी के ताल्लुक़ और ख़ूनी रिश्ते हैं। इसकी वजह से मियाँ-बीवी, माँ-बाप और औलाद जिसमें लड़के और लड़कियाँ दोनों शामिल हैं, एक-दूसरे के लाज़िमन वारिस होंगे और किसी हाल में विरासत से महरूम नहीं होंगे। इसके मौजूद न होने पर या इनके अपना हिस्सा पाने के बाद ही दूसरे रिश्तेदारों का हक़ होगा।

क़ुरआन मजीद ने अपने इस क़ानून में मरनेवाले से सीधे तौर पर ताल्लुक़ रखने वाले लोगों को वास्ते के साथ ताल्लुक़ रखनेवाले लोगों पर पहले दर्जे में रखा है। इस उसूल के तहत बाप की मौजूदगी में दादा या बेटों के होते हुए पोता वारिस नहीं हो सकता। भाइयों और बहनों का ताल्लुक़ भी बाप के वास्ते से होता है, इसलिए बाप की मौजूदगी में विरासत में उनका हक़ न होगा।

वसीयत का हक़

आदमी को अपने माल में वसीयत का हक़ हासिल है। वसीयत इस बात की कि उसके मर जाने के बाद उसके माल का कोई हिस्सा दीन (इस्लाम) की दावत और उसके फैलाने, मुसलमानों की भलाई व तरक़्क़ी या इस तरह के किसी भी नेक और अच्छे काम में ख़र्च किया जाए। इसका एक फ़ायदा यह भी है कि जो लोग ख़ानदान की विरासत से महरूम हों उनकी माली ज़रूरत को पूरा करने और तालीम व तरबियत के लिए भी वह वसीयत कर सकता है। ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने बताया है कि वसीयत एक तिहाई माल ही में हो सकती है। इसकी हिकमत यह है कि इससे ज़्यादा की वसीयत करने से विरासत पानेवालों का हक़ मुतास्सिर (प्रभावित) हो सकता है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया उन लोगों के लिए भी वसीयत नहीं हो सकती जिनका विरासत में अमली तौर पर हिस्सा मौजूद है।

क़ुरआन आदमी के वसीयत करने के हक़ को तस्लीम करता है और इसको अहमियत देता है। उसने विरासत के हुक्मों के तहत एक जगह कहा है—

> "वसीयत जो की गई है उसके पूरा करने या क़र्ज़ जो मरनेवाले पर हो उसको अदा करने के बाद (विरासत तक़सीम होगी) इसमें नुक़सान पहुँचाने की भावना न हो। यह अल्लाह की तरफ़ से ताकीद है और अल्लाह जाननेवाला, और बुर्दबार (सहनशील) है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-12)

इस्लाम की तालीम यह है कि मरनेवाले के माल से पहले कफ़न-दफ़न

का इन्तिज़ाम किया जाए, उसपर क़र्ज़ हो तो वह अदा किया जाए और उसकी वसीयत पूरी की जाए। इसके बाद जो तरका (बचा हुआ माल-जायदाद) है, वह वारिसों में तक़सीम हो।

ख़ुलासा

इस्लाम ने ख़ानदान का जो निज़ाम पेश किया है वह एक मज़बूत निज़ाम है। उसने मुहब्बत, इख़लास और अख़लाक़ व क़ानून की बुनियाद पर इसे पायदार और मज़बूत किया है। समाज ख़ानदानों का मजमूआ (समूह) होता है, ख़ानदान के दायरे में इस्लामी हुक्मों की पाबन्दी होगी तो पूरे समाज पर उसके असरात पड़ेंगे। माहौल के आम फ़साद से मुसलमान ख़ानदान भी तेज़ी के साथ मुतास्सिर (प्रभावित) होते चले जा रहे हैं और इस्लामी शिक्षाओं और तालीमात से बेरुख़ी और ग़फ़लत बढ़ती जा रही है। आज के फ़सादज़दा समाज पर हमारा कंट्रोल नहीं है, लेकिन ख़ानदान के छोटे-से दायरे में अल्लाह तआला ने हमें जो ताक़त, उसे चलाने का जो हक़ अता किया है उससे अगर हम पूरा फ़ायदा उठाएँ और ख़ानदान को इस्लामी रुख़ दे सकें तो अल्लाह ने चाहा तो पूरा समाज इससे मुतास्सिर होगा और इस्लाम के असरात (प्रभाव) हर तरफ़ नज़र आने लगेंगे।

लेखक की अन्य पुस्तकें

औरत और इस्लाम

आख़िरत के अज़ाब से ख़ानदान को बचाइए

अल्लाह का दीन नौजवानों से क्या चाहता है

इनसान और उसकी समस्याएँ

इस्लाम और उसका पैग़ाम

इस्लाम और मानव अधिकार

इस्लाम और मानव एकता

इस्लाम मानवाधिकारों का रक्षक

काबा का सफ़र

क्या इस्लाम से बेहतर कोई दावत हो सकती है?

कमज़ोर और मज़लूम इस्लाम के साए में

ख़ुदा की ग़ुलामी इनसान की बुलन्दी

जनसेवा और इस्लाम

तज़किया क़ुरआन की नज़र में

दौलत में ख़ुदा और बन्दों का हक़

परिवार इस्लाम की नज़र में

बच्चे और इस्लाम

भारत में इस्लाम की दावत

मानव-सेवा इस्लाम की नज़र में

मुस्लिम औरतों की ज़िम्मेदारियाँ

लोगो : हिसाब का समय निकट आ चुका है

वर्तमान परिस्थिति में जमाअते-इस्लामी

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) जीवन और सन्देश

हमारा देश किधर जा रहा है?